International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 09-12-2022, Accepted: 25-12-2022, Published: 11-01-2023
Volume 9, Issue 1, 2023, Page No. 1-6

भारत और श्रीलंका के वंचित नारी–समाज (उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद और महान साहित्यकार मार्टिन विक्रमसिंह के उपन्यासों के परिप्रेक्ष में)

दिलंका रसांगी नानायक्कर
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारत और श्रीलंका के बीच प्राचीन काल से ही घनिष्ट संबंध रहा। भारतीय संस्कृति ही नहीं बल्कि वहाँ के आचार–विचार भी श्रीलंकीय समाज में जुड़ गये। दोनों समाज के लोगों के सोच विचारों में इतना अंतर नहीं दिखने लगा। दोनों समाज पितृसत्तात्मक थे, अतः नारी की स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी। नारी को पर्दाप्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, विधवा समस्या, सतीप्रथा, जैसी कुप्रथाओं की शिकार बनना पड़ा। दोनों देशों के महान साहित्यकार प्रेमचंद और मार्टिन विक्रमसिंह ने अपने उपन्यासों में इस समास्या को उठाया है।

मूल शब्दः वंचित, पितृसत्तात्मक, कुप्रथा, दहेज, विधवा, अनमेल

शोध विधि
प्रस्तुत शोध आलेख विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक प्रस्तुति का है। शोध कार्य के लिए मूल ग्रन्थ एवं सहायक ग्रन्थ का आधार लिया गया है।

भूमिका
उन्नीस वीं, बीसवीं सदियों में भारत और श्रीलंका को कई साम्राज्यों ने अपने अधीन करने का प्रयास किया था और अंत में दोनों देश अंग्रेज साम्राज्य के अधीन बन गये। इस कारण समाज के साधारण जनता को अंग्रेजों का गुलाम बनना पड़ा। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य को स्थिर रखने के लिए देशी जनता को उनके अधिकारों से वंचित रखा था।
वंचित से तात्पर्य यह है कि रहित हो जाना। अर्थात ऐसा जन–समूह जो साधारण जीवन व्यतीत करने वाले जनता की तुलना में गरीबी, सामाजिक बहिष्कार, भेदभाव और हिंसा से अधिक कष्ट झेल रहे हैं, उन्हें वंचित वर्ग कहा जा सकता है। शिक्षा, अस्पताल, भोजन, परिवहन, आदि मूलभूत सुविधाओं और संसाधनों से उन्हें वंचित किया गया ही नहीं आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक स्थितियों पर उनके साथ भेदभाव भी किया गया था। इस समाज परिवेश में दोनों समाज की स्त्री की स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी थी।
बीसवीं सदी के आरंभिक दशक के दो साहित्यकार प्रेमचंद और मार्टिन विक्रमसिंह, भिन्न–भिन्न सामाजिक परिवेश में पले–पड़े समकालीन साहित्यकार थे।
प्रेमचन्द का जन्म सन् 1880 ई. में हुआ और विक्रमसिंह का सन् 1890 ई. में। मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी गद्य साहित्य का युग प्रवर्तक माने जाते हैं और मार्टिन विक्रमसिंह, श्रीलांकीय समाज के सिंहली उपन्यास साहित्य का युग प्रवर्तक। ग्रामीण परिवेश में पले वे दोनों उपन्यासकार ग्रामीण लोगों के सोच–विचार से भी परिचित रहे। उन्होंने समाज की स्त्री की दयनीय दश अपनी आँखों से देखा और अपने उपन्यासों के द्वारा पाठक के सामने प्रस्तुत किया।

तथ्य विश्लेषण
दोनों उपन्यासकार समकालीन होने के कारण दोनों के सामजिक स्थिति में अधिक अंतर नहीं था। दोनों कथाकारों ने नारी जीवन के विभिन्न पक्षों पर विभिन्न परिस्थितियों के सन्दर्भ में विचार किया था। इसका प्रमाण उनके साहित्यिक लेखन पढ़ने से मिलता है। विशेषकर उनके उपन्यासों में नारी जीवन की कई संवेदनशील अनुभूतियाँ मिलती हैं।
इस सन्दर्भ में उस समय के भारतीय समाज पर दृष्टिपात करें तो नारी की कई ऐसी दयनीय स्थितियाँ विद्यमान हैं, जो श्रीलंकीय समाज से अलग है। इनमें से एक है बाल विवाह प्रथा।
उपन्यासकार प्रेमचंद ने कन्या को गाय के सामान बताया था। चाहे किसी में भी बाँध दो, चुपचाप रहें। पाँच साल की बच्ची का विवाह पचास साल के बूढ़े के साथ। चाहे लड़की ने अपने पति का मुँह तक न देखा हो, विवाह का अर्थ न समझती हो, समाज उसपर ध्यान नहीं देते। साथ ही अगर पति मर भी गए, तो अकेले जीने के सिवा और कोई विकल्प नहीं था। पूरा जीवन विधवा बनकर रहना पड़ता था। इस बीच कोई उसे प्यार करे, या वह किसी के साथ भाग जाए, या गर्भवती हो जाए तो समाज उसका मुँह देखना पाप समझता था और उसको मौत के घाट उतार देता था।
प्रेमचंद के उपन्यास 'निर्मला' में बाल विवाह समस्या को उठाया गया है। उपन्यास में प्रेमचंद बाल अवस्था की 'निर्मला' का विवाह जब होने जा रहा था, तब उसकी मन की दशा को ऐसे प्रस्तुत करता है, जैसे प्रेमचंद किसी बालिका के मन को टटोल रहा हो। प्रेमचंद कहते हैं, कि निर्मला अपने माता पिता के साथ प्रसन्न थी, लेकिन जैसे ही उसके विवाह की तिथि निश्चित हुई दृ "उसके हृदय में एक विचित्र शंका समा गई है, रोम–रोम में एक अज्ञात भय का संचार हो गया है– न जाने क्या होगा? उसके मन में वे उमंगें नहीं हैं, जो युवतियों की आँखों में तिरछी चितवन बनकर, ओंठों पर मधुर हास्य बनकर और अंगों में आलस्य बनकर प्रकट होती है। नहीं, वहाँ अभिलाषाएँ नहीं हैंय वहाँ केवल शंकाएं, चिंताएँ और भीरु कल्पनाएँ हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है।"[1]
यहाँ प्रेमचंद बाल–विवाह करने वाली सभी बालिकाओं के मन की स्थिति प्रस्तुत करते हैं। कहते हैं कि लड़कियाँ पराई होती हैं। एक न एक दिन उनको अपने माँ–बाप को छोड़ के पति के घर जाना पड़ता है। यह दोनों देशों की संस्कृतियों का नियम है। पर लड़कों के लिए ऐसा कोई नियम नहीं है।
श्रीलंकीय समाज में बाल विवाह प्रथा, श्रीलंकीय लोगों में विद्यमान नहीं हैं। लेकिन जब अंग्रेज दक्षिण भारत से तमिल लोगों को दास के रूप में लाये थे, आंद्र प्रदेश से आये तेलुन्गु 'कल्लातोनी' लोगों ने श्री लंका के 'कुडागम' नमक गाँव में अपनी बस्ती बनायी थी। वहाँ के लोगों पर किये गए शोध के अनुसार यह

पता चला कि वहाँ की लड़कियों की शादी उनके माँ–बाप द्वारा जल्दी ही करा दी जाती है। माँ–बाप यह चाहते हैं कि अपनी बेटी कम उम्र में ही गर्भ धारण करे। इससे उनका अभिप्राय पैसा कमाना है।

गर्भावस्था की उन महिलाओं की जाँच करने वाली डॉक्टर के कहने के अनुसार, जब वे गर्भवती महिलाओं को जाँच के लिए बुलाती है, तब वे आने से इनकार करती हैं। क्योंकि वे नौकरी पर जाती हैं। बस्ती के लोगों का मानना है कि बच्चों को उठाकर जाने वाली महिलाओं और गर्भवती महिलाओं के लिए लोगों की सहानुभूति अधिक मिलती है।

अक्सर ऐसा होता है कि जब घर के बड़े लोग कई दिनों तक बाहर काम पर लगे रहते हैं, तब घर की लडकियाँ किसी लड़के या मर्द के साथ भाग जाती हैं। इसके लिए घर की अन्य महिलाओं की सहायता भी उनको मिलती है। इतना ही नहीं वे महिलाएँ, लड़कियों को पैसे का लालच देकर जल्दी बच्चों को जन्म देने पर जोर देती हैं। सारी महिलाएँ झुण्ड बनकर लोगों के हाथ पढ़ने, गाँव–गाँव घूमती हैं। हाथ पढ़ने से उनको जितना पैसा मिलता है उससे दुगुना बाल महिलाओं को मिलते हैं, जो गर्भवती हो या छोटे बच्चे के साथ हो। 'अवांछित गर्भ का नियंत्रण के लिए जो भी उपदेश उनको स्वास्थ्य समिति द्वारा दिये जाते हैं फिर भी उन उपदेशों का कोई उपयोग नहीं होता।'[2] इस प्रकार बाल विवाह प्रथा दोनों समाजों में गरीबी को लेकर हो रही थी।

नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय करने वाली समाज की और एक समस्या है, अनमेल विवाह। प्रेमचंद मूलतः विवाह को आत्म विश्वास का साधन मानते हैं। वे यह चाहते हैं कि पति–पत्नी में मेल हो। पर समाज के अनेक विकृतियों की वजह से स्त्री को विवश होकर अनमेल विवाह करना पड़ता है।

सेवासदन की सुमन और गजाधर के बीच कभी अनुराग था ही नहीं। सुमन के लिए वहाँ सिर्फ दुःख–पीड़ा एवं अपमान का कारागार था। दोनों पति–पत्नी का स्वभाव एक–दूसरे से विपरीत था। सुमन रूपवती, गुणवती थी, जबकि गजाधर दुहाजू और अधेड़ उम्र का था, ऊपर से शंकालु भी था। ऐसी परिस्थिति में विवाह का टूट जाना स्वाभाविक था।

उपन्यास की दो वेश्याएँ, भोलीबाई और सुमन को यह वेश्या व्यवसाय अपनाने के पीछे जिम्मेदार भी उनका अनमेल विवाह ही था। अनमेल विवाह स्त्रियों से अधिकार चीन लेता है। अपने विवाह के विषय में वे कभी स्वाधीन नहीं हो पाती हैं। घर में लड़की का रहना, सदैव माता–पिता के लिए बोझ बनता है। इसलिए वे जहाँ लड़की का विवाह तय कर लेते हैं, वहीं उसको विवाह करना पड़ता है। इसी से वे अपने बोझ को हल्का कर लेते हैं।

ऐसे में वे कई बार अपनी बेटी को किसी अयोग्य वर से ब्याह कर देते हैं। वे यह नहीं सोचते हैं कि जिससे अपनी बेटी का विवाह होने जा रहा है, वह उसके योग्य है कि नहीं। सेवासदन उपन्यास की सुमन के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ था। 'लडकियों को कुएँ में ढकेलना और फिर सतीत्व और पतिव्रत धर्म के गीत गाना। इस समूचे व्यापार में बेचारी सुमन की इच्छा–अनिच्चा का सवाल ही नहीं उठता। बलि पशु की तरह जिस खूँटे से बाँध दी जाए, उसे बाँधना पड़ता है।'[3]

आयुगत अनमेल विवाह का परिणाम यह होता है कि सदैव बूढ़े पति को यह डर रहता हैं कि कहीं पत्नी उसे छोड़कर अन्य के साथ न जाय। उसके मन में हीन–भाव अवश्य रहता है। इस भावना के कारण वह अपनी कम आयु वाली पत्नी के व्यवहार पर संदेह की दृष्टी से देखने लगता है। सुमन के वैवाहिक जीवन की दरार भी इसी संदेह के कारण ही हुई थी।

विधवा समस्या भी नारी जीवन की और एक दयनीय स्थिति है। विक्रमसिंह और प्रेमचंद के उपन्यासों में विधवा की चर्चा भी मिलती है। श्रीलंकीय समाज की अपेशा भारतीय समाज में विधवा समस्या प्रचलित थी। पति की मृत्यु होते ही उसके हाथ की चूड़ियाँ तोड़ दी जाती थी, रंगीन कपड़े और आभूषण पहनना उसके लिए निषिद्ध होता था, सर मुड़ा दिया जाता था यही नहीं विधवा को सादा खाना ही दिया जाता था। उसको इस प्रकार की अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। विधवा स्त्री का दूसरा विवाह भी समाज से वर्जित था। कोई विधवा स्त्री किसी पुरुष से हुए अवैध संबंध से, यदि गर्भवती हो जाए तो आत्महत्या के सिवा उसे कोई रास्ता नहीं बच जाता। उसे समाज से और जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। विशेषकर संयुक्त परिवार में विधवाओं की स्थिति बड़ी दयनीय थी। यह प्रेमचंद युग के भारतीय समाज की स्थिति थी। उस समाज में रह रहे प्रेमचंद, इन सभी बातों से परिचित थे। अतः उन्होंने अपने कई उपन्यासों में विधवा समस्या को उठाया।

प्रेमचंद के उपन्यास वरदान में बृजरानी अपने पति की मृत्यु के बाद पतिव्रता का पालन करते हुए पवित्र वैधव्य जीवन को बिताती है। इसके अलावा प्रतिज्ञा उपन्यास की पूर्णा, कर्मभूमि में रेणुका, निर्मला उपन्यास में कल्याणी एवं रुक्मणी, गबन में रतन आदि पात्र प्रेमचंद के उपन्यासों की विधवा पात्रों के प्रमाण हैं।

इस प्रकार प्रेमचंद का उपन्यास कयाकल्प विधवा समस्या को लेकर रचा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में 'पूर्णा' को विधवा होने पर पास–पड़ोस की स्त्रियाँ उसकी बाल मुंडवा देती थी, बिंदी न करने देती थी, रंगीन साड़ियाँ व आभूषण न पहनने देती थी, श्रृंगार न करने देती थी और किसी सुहागिन या कुँवारी युवती के साथ उठने–बैठने भी न देती थी। उपन्यास में जब पूर्णा इन बातों को न मानने से पड़ोस की औरतें उसकी आलोचना भी करती थी। पूर्णा की चरित्र से उपन्यासकार यह बताना चाहते हैं कि विधवा स्त्रियों को अपने जीवन बिताने के लिए अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

उपन्यास में प्रेमचंद पूर्णा का पात्र एक सदाचारी विधवा के रूप में सामने लाये हैं। इसमें आर्य समाज का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। उपन्यास का आरम्भ, मंदिर में हो रही एक व्याख्या से होता है।

वहाँ एक पंडित जी ऐसे व्यक्तियों से सवाल करते हैं, जिनकी पत्नियाँ खोई हुई हैं। वे कहते हैं "आप लोगों में से कितने महाशय हैं जो वैधव्य में पड़ी अबलाओं के साथ अपने कर्तव्य का पालन करने का साहस रखते हैं?...अरे। यह क्या?...एक भी हाथ नजर नहीं आता, हमारा युवक–समाज इतना कर्तव्य शून्य, इतना सारहीन है।"[4]

पूर्णा की तरह, 'प्रेमा' उपन्यास का एक पात्र रामकली भी विधवा स्त्री है। उसकी सास उसपर भी तरह–तरह के अत्याचार करती है। रामकली इस अत्याचार से ऊबकर पुंश्चली हो गयी है। प्रेमचंद रामकली के चरित्र द्वारा यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि बाल–विधवाएँ पुनर्विवाह न होने की स्थिति में अपने चरित्र को भष्ट कर लेती है।

प्रेमचंद रूठी रानी जैसे ऐतिहासिक उपन्यास का निर्माण करके यह बताना चाहते हैं कि समाज में यह कुरीतियाँ प्रेमचंद के समय में ही नहीं, बल्कि प्राचीन काल से ही आ रही हैं। उपन्यास में प्रेमचंद लिखते हैंय 'रानी को बेटी के विधवा हो जाने के डर से शोक तो बहुत हुआ मगर पति की बात मान गयी और छाती पर पत्थर रखकर चुप ही रही। उसकी घबड़ाहट और परेशानी छिपाए नहीं छिपती थी।'[5]

यह उस समय का सामाजिक यथार्थ है। आर्य समाज और ब्रह्म समाज जैसे समाज सुधारवादी संस्थाओं के माध्यम से भारत में प्रचलित अनेक कुप्रथाओं को दूर करने का प्रयास हो रहा था। स्वामी दयानंद सरस्वती, राजा राम मोहन राय जैसे अनेक समाज सुधारकों ने बाल–विवाह निरोधक अधिनियम, सती–प्रथा निरोधक अधिनियम, दहेज निरोधक अधिनियम आदि कई संविधान बनाये

थे। परन्तु आज भी अप्रत्यक्ष रूप से दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, विधवा समस्या और स्त्री के घरेलू हिंसा भारतीय समाज में द्रष्टव्य है।

भारतीय समाज की अपेक्षा श्रीलंकीय समाज की विधवा की स्थिति कही बेहतर है। वह स्वतंत्र है। अपने पति की मृत्यु होने के बाद दूसरी शादी करने का अधिकार उसको मिलता है। ऐसी अनेक घटनाएँ श्रीलांकीय समाज में विद्यमान हैं। अपने पति की मृत्यु के बाद स्त्री अपने दूसरे पति के साथ रहती हैं। यही यथार्थ विक्रमसिंह ने अपनी आखों से देखा था और अपने उपन्यासों द्वारा उनकी अनुभूतियों को प्रस्तुत किया।

विक्रमसिंह के उपन्यास 'गम्पेरालिय' इसका प्रमाण है। गम्पेरालिय उपन्यास की पात्र नन्दा गाँव की कुलीन परिवार के मुहंदिरम की बेटी है। उस समय अंग्रेजों का प्रभाव धीरे–धीरे गाँव की संस्कृति पर भी पड़ रहा था। तो मुहंदिरम ने भी अपनी दोनों बेटियों को अंग्रेजी सिखाने के लिए गाँव के स्कूल के अंग्रेजी अध्यापक पियल को बुलवाया था। पियल को मुहंदिरम की छोटी बेटी नन्दा से प्रेम हो गया। लेकिन पियल उस गाँव के निम्नकुल के होने के कारण मुहंदिरम परिवार, उस विवाह से सहमत नहीं हुआ। नंदा के माँ–बाप पियल के कुल को लेकर नन्दा के सामने पियाल का उपहास किया करते थे।

अंत में मुहंदिरम ने नंदा का विवाह दुसरे गाँव के कुलीन जिनदास से करवा दिया। हालांकि जिनदास एक कुलीन परिवार का लड़का था, फिर भी उसके पास धन का अभाव था। दो–तीन भूमि जो उसके पास थी, वे सब उन्होंने विवाह के लिए बेच डाले। विवाह से कुछ महीनों बाद, व्यापर करने के लिए सुदूर पूर्व एक गाँव में चला गया। इस बीच नंदा के पिता मुहंदिरम की मृत्यु हो गयी। इधर गर्भवती नन्दा बच्चे को जन्म देते ही उस बच्चे की मृत्यु हो गयी। कई महीनों, कई सालों से जिनदास से कोई खबर नहीं मिली तो सब सोचने लगे कि उसकी भी मृत्यु हो गयी। इस बीच पियल का नन्दा के घर में आना–जाना फिर से आरम्भ हो गया और पियाल के अनुरोध पर विधवा नन्दा का विवाह पियल से करवा दिया।

जब विधवा नन्दा से पियल ने विवाह का अनुरोध किया तो नन्दा का मानसिक स्वभाव उपन्यासकार प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

'नन्दा यह जानती थी, कि जिनदास से शादी करने से पहले पियल ने उसके बारे में कुछ अलग तरीके से सोचा था। शादी होने से पहले पियल के प्रति न उसको कभी डर था और न ही शक। उसने पियल के साथ बातें की, खूब मजाक किया। पियल के साथ उसका बर्ताव बचपन की तरह सायानी होने के बाद भी वैसा का वैसा रहा। जब पियल ने नन्दा को खत दिया था, तब भी नन्दा ने मजाक करते हुए पियल से खत लिया था। नन्दा की यह आदत थोडा–बहुत जब छूट गयी, तब नन्दा की माँ मातर हामिने ने नन्दा से पियल के बारे में पुछा था। जिनदास से शादी करने के बाद उसने यह सब हरकतें बंद कर दी।

नन्दा ने कभी यह सवाल अपने से नहीं पुछा कि उसको अब उसी पियल के कारण एक अजीब–सा डर, शक, अजीब–सी शर्म, बैचेनी–सी क्यों हो रही है।

अब ऐसा होता है कि कभी जिनदास के बारे में वह सोचती है, तो पियल की ही शकल उसके सामने आती है। ऐसा क्यों होता है?[6]

नन्दा एक ऐसी स्त्री नहीं है, जो कभी भी अपने आपको धोखा देती है और न ही धार्मिक है। उसकी चपलता के कारण ही उसके अन्तःकरण में ऐसी भावनाएँ पैदा हो गयीं, जो पहले हुई ही नहीं। लेकिन उसकी कुलीनता का अभिमान, रीति– रिवाजें, पति भक्ति आदि पहरेदार, बनकर उसके मन के अन्दर किसी भी भावना को आने नहीं दिया। पर वह अपने अन्तः करणं की बात नहीं जानती।

इस प्रकार दोनों उपन्यासकारों ने समाज में परचलित विधवा समस्या का उल्लेख अपने उपन्यासों में किया था।

समाज के लोगों के बीच नारी को लेकर उत्पन्न और एक कुरीति है सतीत्व की भावना। श्रीलंकीय और भारतीय समाज में सतीत्व की भावना भी उपन्यासकारों का चर्चित विषय बन गयी है। पुरुष समाज ने न केवल नारियों की सतीत्व की बढ़–चढ़कर वर्णन किया है, बल्कि सतीत्व भंग नारियों की अवहेलना और तिरस्कार भी किया है। इतना ही नहीं जिन नारियों को समाज के व्यभिचारी मर्दों के कारण अपना सतीत्व नष्ट करना पड़ा, उन नारियों की चर्चा प्रेमचंद की अपेक्षा विक्रमसिंह के उपन्यासों में की गयी है। ऐसी नारियों की स्थिति समाज में अत्यंत दयनीय हो गयी है।

चाहे पुरुष कितना भी दुराचारी, व्यभिचारी ही क्यों न हो, नारी पर ही समाज की उँगलियाँ उठ जाती हैं, न कि किसी पुरुष पर। सिंहली में एक कहावत है, जिस तरह कुक्कुर राख में सोकर उठने के बाद सारा राख अपने शरीर से झाड़ देता है, वह साफ सुतरा बनता है, उसी तरह पुरुष भी अपने किये हुए व्यभिचार और दुराचार से साफ निकलता है। लेकिन कोई नारी अगर एक बार छोटी–सी भी गलती करें तो उसका दाग कभी मिट नहीं सकता। इसलिए किसी घर में ऐसी लड़की का होना, उसके माँ–बाप की नाक कटवाना जैसे है। ऐसी स्थिति में कभी लडकियाँ अपने प्राण भी त्याग देती है। यह उस समय के श्रीलंकीय समाज का यथार्थ था और आज भी है।

आज भी देश के अधिकतर परिवारों में जब शादी होती है, तब शादी के पहले दिन वर–वधू के कमरे में सफेद वस्त्र बिछाया जाता है और सुबह के समय सासूमाँ और परिवार के कुछ अन्य स्त्रियाँ वधू की पवित्रता की परीक्षा लेती है। कही वधू पवित्र न निकली तो उसका पूरा जीवन, कभी सासूमाँ के और कभी पति के अन्याय को सहती हुई बिताना पड़ता है।

विक्रमसिंह ने अपने उपन्यास अइरांगनी, कलुवरा गेदर और मिरिंगुवा आदि उपन्यासों में सतीत्व भंग स्त्रियों के समाज यथार्थ को प्रस्तुत किया था। अइरांगनी उपन्यास का आरम्भ, व्यभिचारी पुरुष से हुए बलात्कार के कारण अइरांगनी आत्महत्या करने की तैयारी से होता है। वहाँ से कही जाते हुए रेजी ने अइरांगनी को देखकर उसकी जान बचाता है। बाद में उन दोनों में प्यार होता है और वह प्यार विवाह तक चला आता है। अइरांगनी कई बार अपनी समस्या रेजी से कहने का प्रयास करती है, पर वह असफल रहती है। विवाह के दिन रात रेजी यह बताते हुए अइरांगनी से क्षमा माँगता है कि विवाह से पहले किसी लड़की के साथ उसका शारीरिक सम्बन्ध रहा, तो अइरांगनी उसे क्षमा कर देती है। पर जब अइरांगनी ने यह बात रेजी से कही कि किसी व्यभिचारी ने उसकी सतीत्व भंग किया, तब रेजी ने उसको माफ नहीं किया। इस प्रसंग का वर्णन उपन्यासकार विक्रमसिंह इस प्रकार करते हैं।

'अइरांगनी की बातें सुनते हुए रेजी अचानक पत्थर बन गया। उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। धीरे–धीरे उसका चेहरा बदलता देख अइरी ने, कहानी के बाकी हिस्सा भी सुनाया, पर रेजी को कुछ भी सुनाई नहीं दिया। उसे यह लगा कि किसी तांबे की पट्टी से कोई उसका दिल चीर रहा हो। प्लास से किसी लकड़ी को दबाने की तरह वह कुरूसी को पकड़ कर उठ गया।...'

"रेजी, मैंने आपको माफ किया। आप क्यों नहीं कर सकते? मुझे माफ कर दो"[7] अइरांगनी ने बताया।

अइरांगनी के घुटने टेककर माफी माँगने पर भी रेजी ने उसको माफ नहीं किया और दुसरे ही दिन यह कहकर भारत गया कि जब कभी अपने आपको संभालूंग, तब वापस आऊँगा। यहाँ विक्रमसिंह समाज की यह विकृति दिखाना चाहते हैं कि चाहे पुरुष जो भी गलती करें उसकी गलती माफ होगी, पर स्त्री की

गलती कतई माफ नहीं होगी, चाहे वह अनजाने में भी हुआ क्यों न हो।

इस प्रकार का एक प्रसंग विक्रमसिंह के मिरिंगुवा उपन्यास में भी दर्शाया गया है। उपन्यास में मोली भी ऐसी लड़की थी अनजाने में जिसका सतीत्व भंग हुआ है। अंत में सामाजिक समस्याओं के कारण मोली आत्महत्या कर लेती है। विक्रमसिंह ने उस तरह की स्त्रियों को समाज में फिर से प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। अइरांगनी उपन्यास के अंत में रेजी भारत से वापस आ जाता है और अपनी पत्नी अइरांगनी को स्वीकार करके वैवाहिक जीवन बिताता है।

विक्रमसिंह के कलुवारा गेदर उपन्यास के पोडिहामिने भी ऐसी एक स्त्री है जो गाँव के अमीर और व्यभिचारी एक पुरुष से सतीत्व भंग हुआ है। विक्रमसिंह पोडिहामिने को भी पुनः समाज में मर्यादा के साथ प्रतिष्ठा प्रदान करते हुए उसका विवाह तिनन से करवा देते हैं।

विक्रमसिंह की अपेक्षा प्रेमचंद के उपन्यासों में सतीत्व भंग स्त्रियों की चर्चा नहीं मिलती।

दहेज प्रथा भी स्त्रियों को पीडा देने वाली और एक कुरीति है। प्रेमचंद के समय में दहेज की कुप्रथा का खंडन अपनी चरम सीप पर था। उस समाज में लड़की भले ही रूपवती क्यों न हो, बिना दहेज, उसकी शादी किसी अच्छे घर में नहीं हुई थी। अतः जिनके माँ–बाप गरीब हैं और जिनको दो वक्त की रोटियाँ तक ठीक से नसीब नहीं होती, उनकी बेटियाँ या तो ऐसी कुँवारी ही रह जाती थी, या फिर थोड़े से रुपये का दहेज देकर किसी कुपात्र के गले में मढ़ दी जाती थी। इससे माँ–बाप यह नहीं सोचते हैं कि लड़की की पूरी जिन्दगी बर्बाद हो जाती है। जहाँ तक कि उस युग के पढ़े–लिखे लोग भी दहेज द्वारा कन्या पक्ष से अधिक से अधिक धन जुटाने में लगे रहते थे।

प्रेमचंद के उपन्यास सेवासदन के पात्र सुमन के वेश्या होने का मूलभूत कारण भी यही था। उस समाज में यह कुरीति आग की तरह फैल रही थी। दहेज का अभाव, न कन्या के रूप–गुण का महत्व देखती है, न ही कुलीनता का। पैसों के आगे उसकी सारी कमियाँ छिप जाती है। सुमन के पिता जी का सोच तत्कालीन समाज परिस्थिति से विपरीत था। वे हमेशा यही सोचा करते थे कि यह दहेज देने वाली कुरीति पूरे समाज से एक–दो साल के अन्दर ही खत्म हो जाएगी। उपन्यास में प्रेमचंद कहते हैंय 'समाचार पत्रों में जब वह दहेज के विरोध में बड़े–बड़े लेख पढ़ते तो बहुत प्रसन्न होते। गंगाजली से कहते कि अब एक ही दो साल में यह कुरीति मिट ही जाती है। चिंता करने की कोई जरुरत नहीं।'[8]

परिस्थिति ऐसी हुई कि जब उनकी बेटी की शादी की बात आई, तब उनको जीवन की वास्तविकता का पता चल गया। उसकी समझ में यह आया कि ईमानदारी के रास्ते पर चलनेवालों को कभी दुःख और परेशानी के सिवा और कुछ नहीं मिलता। वह जहाँ कहीं बेटी के लिए वर ढूँढने जाता था, वहाँ शादी की तगड़ी रकम की माँग होती थी और दहेज के सिवा कोई सीधे मुँह बात तक नहीं करना चाहता था। 'वह शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे कि ऐसे घरों में लेन–देन की चर्चा न होगी, पर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल उसकी शिक्षा के अनुसार है।'[9]

उपन्यासकार शिक्षित समाज की कुरीतियों पर कुठारघात करते हैं। शिक्षित वर्ग केवल थोपी आदर्शवाद की चमक है। समाज उस वर्ग से जहाँ आदर्श, उच्च मान्यताओं की तथा उच्च संस्कृति की माँग करता है, वहाँ उसी वर्ग को ही स्वयं विभिन्न भ्रष्टाचारों का आश्रय स्थल है। इसी कारण सेवासदन के कृष्णचन्द्र जैसे आदर्श व्यक्ति को भी उसी भ्रष्टाचार का शिकार बनना पड़ा। जिंदगी की इसी सच्चाई के आगे उसकी ईमानदारी और आदर्शवाद को दम तोड़ना पड़ा।

सेवासदन में दहेज के अभाव के कारण ही सुमन का अनमेल विवाह हुआ था। बाद में अपने पति द्वारा उसका अनादर और अपमान किया जाने से सुमन, वेश्या होने को विवश हुई। इस वेश्या–वृत्ति के अलावा सुमन के पास अन्य कोई रास्ता नहीं था। सुमन की तरह पीड़ित स्त्रियों के पास दो ही रास्ते हैं। एक आत्महत्या करके अपना जीवन समाप्त करना और दूसरा वेश्या वृत्ति अपनाकर सुख–भोग प्राप्त करना। वैवाहिक कुरीतियों की इसी दहेजप्रथा ने समाज में सुमन जैसी अनेक स्त्रियों को वेश्या व्यवसाय के अग्नि कुंड में धकेला।

श्रीलंकीय समाज में दहेज को लेकर गहरी समस्याएँ खड़ी नहीं होती। माँ–बाप के पास जितनी भी संपत्तियाँ हैं, वे सब अपनी इच्छा से बच्चों की शादी–ब्याह में, सभी बच्चों में बराबर बाँट दी जाती हैं। यही उनका दहेज है। इस यथार्थ के सम्बन्ध में विक्रमसिंह के उपन्यास 'विरागय' में ऐसा उल्लेख मिलता है।

अरविन्द और मेनका गाँव के बड़े वैद्य की संतान थी। मेनका की शादी करा दी गयी थी और अरविंद और उसकी माँ घर में रह गये। पिता की मृत्यु के बाद कोई आमदनी न होने के कारण अरविन्द ने पढ़ाई छोड़ दी। इस बीच मेनका भी घर का बाकी सामान उठा ले जाने का प्रयास करने लगी। पर अरविन्द के लिए रखे गए सामान को ले जाने में माँ से अनुमति नहीं मिली। इसलिए मेनका और माँ के बीच बहस होना आरम्भ हुआ। इस संबंध में उपन्यासकार, अरविन्द की सोच के द्वारा यह प्रस्तुत करते हैं–

'जब दीदी की शादी हुई थी, तब पिताजी ने उसे दहेज के रूप में सिर्फ पैसों से तीन हजार रुपये की रकम दी थी। मुझे पढ़ाने के लिए भी उन्होंने पैसा खर्च किया था, जबकि माँ का भविष्य के लिए कुछ नहीं बचाया। अब दीदी से माँ का गुस्सा होने का कारण यह भी हो सकता है'

"दो साल पहले पिताजी ने मुझसे कहा कि यह घर और आँगन की जमीन इसलिए धर्मदास के नाम कर दी, क्योंकि ये सुरक्षित रहे।" कहते हुए माँ बैचौनी से कुर्सी से उठी। यहाँ धर्मदास, मेनका का पति है,जो पैसे वाला है।

"सुरक्षित रखने के लिए नहीं माँ, पिताजी ने मेरे पति से तीन हजार उधार ले रखे थे और किसी और को भी यह घर और जमीन गिरवी रखकर दो हजार लिए हुए थे। कहीं उस आदमी घर और जमीन न ले जाए, इसलिए उन्होंने घर और जमीन धर्मदास के नाम कर दिए। लेकिन निर्विवाद विलेख में पति के नाम के बदले मेरा ही नाम है"[10] मेनका ने विलेख को माँ के सामने रखते हुए कहा।

श्रीलंकीय समाज में दहेज को लेकर परिवारों में अक्सर यही समस्याएँ विद्यमान है, जबकि भारत की दहेज समस्या इससे अलग। आज के श्रीलंकीय शिक्षित समाज में दोनों पक्ष से दहेज के ऊपर ध्यान नहीं दिया जाता। पर शादी के बाद जब बेटी ससुराल जाती है, उसके माँ–बाप दहेज के रूप में नहीं, बल्कि अपनी खुशी से बेटी के नाम पर जमीन, जायदाद, आभूषण आदि देते हैं। शायद ही कभी ऐसा होता है, किसी दूर के गाँव के गरीब परिवार में दहेज को लेकर समस्या उठ खड़ी हो गयी हो। इस सभी कारणों के पीछे मुख्य एक बड़ी समस्या थी। वह थी कि समाज उस समय पितृसत्तात्मक होना। उस पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्रियों को कई सुविधाओं से वंचित रखा था। जहाँ तक कि स्त्रियों को अपने मन की बात भी कहने के लिए अवसर नहीं मिला। प्रेमचंद के उपन्यासों में जितनी भी नारी पात्र विद्यमान हैं, वे सदियों से पुरुष–प्रधान समाज में शोषित जीवन व्यतीत करती आई हैं।

प्रेमचंद का उपन्यास रूठी रानी का यह प्रसंग इसका प्रमाण है। 'बेटी, माँ को घबरायी हुई देखकर, समझ गयी कि दाल में कुछ काला है, मगर कुछ पूछने की हिम्मत न पड़ी। बेटी की जात, इतनी ढिठाई कैसे करती?.....जी में बहुत बहुत तड़पी, तिलमिलायी

मगर कलेजा मसोसकर रह गयी। क्या करती? हमारे यहाँ बेटी बिन सींगों की गाय है।'[11]

भारत और श्रीलंका प्राचीन समय से ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधीन थे, जिससे बेटियों से कहीं अधिक महत्व बेटों को दिया गया था। घर में पिता का बोलबाला चल रहा था। लेकिन वर्तमान श्रीलंका में लड़कियों की शिक्षा सुविधा बढ़ जाने के कारण मातृसत्तात्मक समाज का आगमन भी हो गया था, जबकि भारत की स्थिति अभी भी जैसी की तैसी रह गयी। प्रायः माँ–बाप अपने स्नेह बेटों को ही दिखाते हैं। किसी परिवार में बेटी का जन्म श्राप मानता है और बेटियों से दुर्व्यवहार करते हैं।

इस बात का प्रमाण प्रेमचंद के निर्मला उपन्यास में मिलता है। निर्मला की माँ कल्याणी, प्राचीन काल से चली आ रही पितृसत्तात्मक व्यवस्था से पूर्णत्या मुक्त नहीं थी। उसने अपनी ममता को बेटों में बाँट रखा था। हमेशा उसने वही सोचा कि बेटी तो परायी हो जाती है, पर बेटा ही कुलदीप बन जाता है और अपनी माँ के बुढ़ापे में उसको पानी तक पिलाता है। उपन्यास के अनुसार कल्याणी ने अपनी बेटियों को ही अपने पति की मृत्यु का कारण ठहराया।

आज भी आशीर्वाद के रूप में किसी स्त्री को यही कहा जाता है कि 'पुत्रवती हो', 'साथ पुत्रों की माँ हो'। पुत्री होने का आशीर्वाद कभी नहीं दिया जाता। वर्तमान समाज में गर्भवती महिलाएँ भ्रूण परिक्षण द्वारा अपना जाँच करवाकर, यदि लड़की हो, तो गर्भपात कराने को विवश हो जाती हैं। आज भी भारत के कई गाँवों की महिलाएँ अपने सास या परिवार की किसी दूसरी महिला के दबाव में आकर विवशता से लड़कियों के पैदा होने से पहले गर्भपात कराती हैं। इसी काम के नियंत्रण में भारत के वर्तमान राष्टपति ने भ्रूण परीक्षा को प्रतिबंधित किया है।

प्रारंभ से ही स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन रहा करती थी। समाज ने उन स्त्रियों को यही माना कि वे केवल बच्चों को पैदा कराने वाली मशीन हैं। अर्थात उनकी उपयोगिता संतानोत्पत्ति के साथ–साथ कामेच्छा की पूर्ति है। यही नहीं पति और परिवार के अन्य सदस्यों की सेवा तथा गृहकार्य के साधन के रूप में भी उसका प्रयोग करती थी। नेतृत्व की भूमिका भी उन्हें नहीं दी गयी थी। यह स्थिति केवल भारतीय समाज में ही नहीं प्राचीन काल के श्रीलंकीय समाज में भी देखने को मिलती थी। लेकिन भारतीय समाज के कुछ गाँवों में आज भी नारी की स्थिति वही–की–वही रह गयी। लेकिन मुंशी प्रेमचंद स्त्री को चार दीवारों में कैद तथा केवल बच्चे पैदा करने की मशीन के रूप में देखना पसंद नहीं करते थे। वे उसे मुक्त एवं आत्मनिर्भर देखना चाहते थे। इसलिए उनके साहित्य में सारी संवेदनाएँ सदैव नारी के पक्ष में अधिक रही है।

प्रेमचंद अपने 'विविध प्रसंग–भाग तीन' पत्रिका में समाज में स्त्री के प्रति प्रचलित कुप्रथाओं का विरोध करते हुए लिखते हैं कि समाज में अभी तक पितृसत्ता का अधिकार है। पुरुष में चाहे कितना दोष हों, चाहे वह कितना भी लम्पट हों, वह कितना ही अत्याचार करे, चाहे दूसरा विवाह भी करे, स्त्री इसका कोई विरोध नहीं कर सकती। पुरुष का स्त्री पर अधिकार ज्यों का त्यों बना रहता है। अगर स्त्री संतान विहीन हो, कुरूप हो, पुरुष उससे संतुष्ट न हो, तो पुरुष को अपने मन की संतुष्टि के लिए अलग–अलग रास्ते हैं। पर स्त्री के पास सब झेलने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। प्रेमचंद स्त्री को अपना अधिकार दिला देना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने इन्हीं समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक चर्चा की है।

पितृसत्तात्मक समाज की झलक विक्रमसिंह के समाज में भी द्रष्टव्य थी। उनकी आत्मकथा के अनुसार जब उनका जन्म नौ बेटियों के बाद हुआ तो घर के सब खुश हुए। वे लिखते हैंय 'बारी–बारी से नौ बेटियों को जन्म देने के बाद जब विक्रमसिंह की माँ 'मागाल्ला बालापिटिया लियानागे नोंचिहमी' विक्रमसिंह को जनम दिया तो पूरे परिवार वालों के चेहरे खिल उठे। खुशी से सब कहने लगे, 'एक सरोम(मर्द का पहनावा) घर में आ गया'।'[12]

पिता जब घर में रहते थे, तो माँ कभी पिता के बराबर नहीं बैठती और वह एक छोटी कुर्सी पर ही बैठा करती थी। अगर घर के सभी कहीं जाएँ तो माँ और बेटियाँ पिता और भाइयों के साथ न जाकर उनके पीछे ही जाती थीं। जब माँ खाना परोसती थी, तब हमेशा पिता को और बेटों को पहले परोसती थी और बचा–कुचा ही बेटियों को देती थीं। आज भी यही स्थिति श्रीलंका के गाँव के समाज में विद्यमान है। इसी पितृसत्तात्मक समाज का प्रमाण विक्रमसिंह के गम्पेरालिय उपन्यास में द्रष्टव्य है।

'हिसाब–किताब देखते ही मुहंदिरम ने दाँतों को पीसा। उसने चश्मा निकालकर पोंछने लगा, तो पास की छोटी कुर्सी में बैठी हुई मातरा हामिने उठकर घर के अंदर चली गयी।'[13] यहाँ विक्रमसिंह ने यह दर्शाया कि पत्नी कभी पति के बराबर नहीं बैठती, वह हमेशा छोटी कुर्सी पर ही बैठती है।

यद्यपि वर्तमान भारतीय एवं श्री लंका के समाजों में आधी आबादी स्त्रियाँ ही है, तथापि इतिहास के आरंभिक पन्नों में दोनों समाज की स्त्रियों की अबादी बहुत कम थी। भारत में तो उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय थी।

बच्चियों के जन्म होते ही उसे दूध में डुबोकर मार दिया जाता था, या भ्रूण हत्या(खाप) कराता था। इस घटना से सम्बंधित एक प्रसंग प्रेमचंद के उपन्यास रूठीरानी में उल्लेख किया गया है।

उपन्यास के आरंभिक प्रसंग में यह दिखाया गया है कि राज महल में बेटी के पैदा होने की खबर मिलते ही राजा–रानी सहित, महल के सभी लोग दुखित हुए, पर जब उस लड़की की सौन्दर्य की खबर आई, तब सब के आँसू सूख गए। यह प्राचीन काल में ही नहीं प्रेमचंद के समाज में भी, लड़की का पैदा होना उनके माँ–बाप की परेशानी की जड़ बनी। इसलिए प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों द्वारा समाज की उस कुरीति का कठोर विवेचन किया।

श्रीलंकीय समाज में प्राचीन काल में दहेज की समस्या के कारण गरीब माँ–बाप ने बेटियों का जन्म अपमानित माना। लेकिन विक्रमसिंह के समय में वह प्रथा समाज से विलीन हो गयी थी।

उस समय की सामाजिक स्थिति दोनों साहित्यकारों ने अपनी लेखनी में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। स्त्रियों की सामाजिक दयनीय स्थिति पर दोनों उपन्यासकारों के दिलों में सहानुभूति पनप रही थीं।

यद्यपि प्रेमचंद के समय में स्त्री की स्थिति बड़ी दयनीय थी, तथापि सामाजिक सुधार के आन्दोलनों, विशेषकर स्वाधीनता आन्दोलन के फलस्वरूप उनकी स्थिति में सुधार आया। प्रथम विश्व युद्ध के बाद नारी भी मुक्ति के लिए आन्दोलन करने लगी। 'सन् 1917 में स्त्रियों का पहला प्रतिनिधि मंडल तत्कालीन 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर्म इंडिया', लॉर्ड मोंटेग्यू से मिला और स्त्रियों के लिए पुरुषों के सामान मताधिकार की माँग की। स्त्रियों ने अनेक जन–सभाएँ आयोजित कीं और सरकार के पास अपनी माँग पेश कीं। सन् 1917 के इंडियन नेशनल कांग्रेस के अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता एनी बेसेंट ने की थी, स्त्रियों के लिए सामान राजनीतिक अधिकार की माँग स्वीकार की गयी। सन् 1929 ई० तक प्रत्येक प्रान्तीय एसेंबलियों ने स्त्रियों को मताधिकार प्रदान कर दिया।'[14]

इतना ही नहीं उस समय यानी सन् 1930 को जब गाँधी जी नमक आन्दोलांक के लिए डांडी यात्रा कर रहे थे, तब कमला देवी नमक एक महिला के अनुरोध पर गांधी जी ने 1000 के ऊपर महिलाओं को आन्दोलन में भाग लेने की अनुमति दी। यही नहीं सन् 1927 को स्थापित 'द ऑल इंडिया विमेन कॉन्फेरंस' ने समाज में नारी शिक्षा और सामाजिक सुधार का कार्य अपने हाथ में ले लिया था।

इस तरह के सामाजिक परिवेश से प्रेमचंद प्रभावित थे। उन्होंने भारतीय नारी की सामाजिक यथार्थ को अपने लेखन द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया। सन् 1932 को हंस पत्रिका के 'भारतीय महिलाओं में नवीन जागृति' शीर्षक पर उन्होंने भारतीय नारियों का समर्थन करते हुए लिखा हैय '..वे सार्वजनिक निर्वाचनाधिकार चाहती हैं, जायदाद या शिक्षा की कोई कैद उन्हें पसंद नहीं और राष्ट्रीय एकता का तो जितने जोरों से स्त्रियों ने हरेक अवसर पर समर्थन किया है, उस पर बहुमत से हिन्दू और मुस्लिम पुरुषों को लज्जित होना पड़ेगा।'[15]

इस दृष्टी से श्रीलंकीय समाज में नारी प्रतिष्ठा, भारतीय समाज की तुलना में कुछ हद तक आगे है। राजनैतिक धरातल पर देखा जाए तो, विश्व की प्रथम महिला प्रधानमंत्री जो नाम से सिरिमावो भंडारनायके है, श्रीलंका से थी। उन्होंने सन् 1960 को श्रीलंका की प्रधान मंत्री की बागडोर संभाली थी। उस समय से विक्रमसिंह के युग तक आते–आते श्रीलंकीय समाज से महिलाएँ स्वतंत्र की ओर अग्रसर हो गयी।

इस प्रकार भारतीय और श्रीलंकीय समाज के महान साहित्यकार प्रेमचंद और मार्टिन विक्रमसिंह की दृष्टी में नारी की स्थिति कैसी रही, उनके उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. प्रेमचंद, निर्मला, पृष्ठ 05
2. विकल्प रीति विभाग, प्रजा दायित्व कार्यक्रम(समीक्षा), पृष्ठ 50, ग्लोब प्रिन्टिंग वर्क्स, कोलोम्बो–7, श्रीलंका, पहला संस्करण 2011
3. प्रेमचंद, सेवासदन, पृष्ठ 232
4. मुंशी प्रेमचंद, कायाकल्प, पृष्ठ 66
5. https://readbooks.pustak.org/index.php/books/bookdetails/8610/Ruthi%20Rani
6. विक्रमसिंह, गम्पेरलिय, पृष्ठ 158–159
7. विक्रमसिंह, अइरांगनी, पृष्ठ 47–48
8. प्रेमचंद, सेवासदन, पृष्ठ 05
9. वही, पृष्ठ 05
10. विक्रनासिंह, विरागया, पृष्ठ 84
11. https://readbooks.pustak.org/index.php/books/bookdetails/8610/Ruthi%20Rani
12. मार्टिन विक्रमसिंह, 'उपन्दा सिटा'(जन्म से ले कर),पृष्ठ 18, सरसा प्रकाशन,राजगिरिया, उन्नीसवीं संस्करण 2017
13. विक्रमसिंह, गम्पेरलिय, पृष्ठ 29
14. डॉ० सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थ और प्रेमचंद, पृष्ठ 123, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1994
15. डॉ० सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थ और प्रेमचंद, पृष्ठ 124, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1994